औ़रतों के लिए
ज़कात
व सदक़ात का बयान

लेखक

हज़रत मौलाना आ़शिक़ इलाही साहिब
बुलन्द शहरी रह०

मुसलमान औ़रतों से रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि

व सल्लम की बातें

* औ़रतों के लिए *

ज़कात व सदक़ात का बयान

लेखक

हज़रत मौलाना आ़शिक़ इलाही साहिब
बुलन्द शहरी रह.

हिन्दी अनुवादः मुहम्मद इमरान क़ासमी

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो (प्रा. लि.)
422, मटिया महल, उर्दू मार्किट, जामा मस्जिद
देहली-110006

सर्वाधिकार प्रकाशक के लिए सुरक्षित हैं

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

नाम किताब : ज़कात व सदक़ात का बयान

लेखक : मौलाना आशिक़ इलाही साहिब

हिन्दी अनुवाद : मुहम्मद इमरान क़ासमी

संयोजक : मुहम्मद नासिर ख़ान

तायदाद : 2100

प्रकाशन वर्ष : सितम्बर 2003

कम्पोज़िंग : इमरान कम्प्यूटर्स
मुज़फ़्फ़र नगर (0131-2442408)

\>>>>>>>>>>>

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो प्रा० लि०

422, मटिया महल, उर्दू मार्किट, जामा मस्जिद देहली-110006

फ़ोन आफ़िस, 23289786, 23289159 आवास, 23280786

विषय सूची

मक्तबा-ए-अशरफ़

ज़कात व सदक़ात के फ़ज़ाइल व मसाइल

रिश्तेदारों और पड़ोसियों पर ख़र्च करने का सवाब

औरतों को ज़कात और सदक़े का ख़ुसूसी हुक्म

हदीसः (1) हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बीवी हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा का बयान है कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने औ़रतों को ख़िताब फ़रमाते हुए नसीहत फ़रमायी कि ऐ औ़रतो! सदक़ा दो अगरचे अपने ज़ेवर ही से हो क्योंकि क़ियामत के दिन दोज़ख़ वालों में से ज़्यादा तुम ही होगी।

(मिश्कात शरीफ़, तिर्मिज़ी)

तशरीहः रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम कभी-कभी औ़रतों को भी सामूहिक तौर पर ख़िताब फ़रमाते थे। एक मौक़े पर यह बात इरशाद फ़रमाई जो ऊपर की हदीस में ज़िक्र की गयी है, यानी औ़रतों को सदक़ा करने का हुक्म फ़रमाया और साथ ही सदक़े का फ़ायदा भी बताया और वह यह कि सदक़े को दोज़ख़ से बचाने में बड़ा दख़ल है। चूंकि औ़रतों से भी तरह-तरह के गुनाह होते रहते हैं और बड़े बड़े गुनाहों में मुब्तला रहती हैं इसलिये दोज़ख़ से बचने की तदबीर बताई कि सदक़ा किया करो, अगर अलग से माल न हो तो ज़ेवर ही में से दे दो। क़ुरआन व हदीस में लफ़्ज़ 'सदक़ा' फ़र्ज़ ज़कात के लिये भी इस्तेमाल हुआ है और नफ़िल सदक़े के लिये भी बोला गया है। इस हदीस से फ़र्ज़ सदक़ा यानी ज़कात और नफ़िल सदक़ा यानी ख़ैरात दोनों मुराद हो सकते हैं।

ज़कात किस पर फ़र्ज़ है

ज़कात हर उस बालिग़ मर्द और औरत पर फ़र्ज़ है जो 'शरई निसाब' के बराबर माल का मालिक हो, चाहे माल उसके पास हो चाहे बैंक में रखा हो, चाहे नक़दी हो चाहे नोट हो, चाहे सोना-चाँदी हो। जितने रुपये या माल के बदले मे साढ़े बावन तौले चाँदी आ सकती हो उसको निसाब कहते हैं। लोग समझते हैं कि बड़े रईस कबीर और अमीर व दौलतमन्द पर ही ज़कात फ़र्ज़ है हालाँकि ज़कात के फ़र्ज़ होने के लिये बहुत बड़ा मालदार होना ज़रूरी नहीं है। ग़ौर कर लो कि साढ़े बावन तौला चाँदी कितने रुपये में आ सकती है। अगर दस रुपये तौला भी हो तो साढ़े पाँच सौ रुपये के अन्दर-अन्दर आ जायेगी। बहुत-सी औरतों के पास इतना माल होता है मगर ज़कात अदा नहीं करतीं और उम्र भर गुनाहगार रहती हैं और इसी गुनाह में मुब्तला होते हुए मर जाती हैं। अगर नक़दी न हो तो ज़ेवर तो होता ही है जो मायके या ससुराल से मिलता है, उसपर ज़कात फ़र्ज़ होती है मगर अदा नहीं की जाती, यह ज़ेवर आख़िर में वबाले जान बनेगा तो पछतावा होगा। अल्लाह तआला हमें अपनी पनाह में रखे।

मसलाः तिजारत के सामान पर भी ज़कात फ़र्ज़ होती है। अगर साढ़े बावन तौला चाँदी की क़ीमत को पहुँच जाये।

मसलाः अगर न कुछ नक़दी मौजूद है न तिजारत का सामान है, न चाँदी है और सिर्फ़ सोना है, तो जब तक साढ़े सात तौला सोना न हो ज़कात फ़र्ज़ न होगी, लेकिन अगर कुछ चाँदी और कुछ सोना है या कुछ सोना है और कुछ नोट रखे हैं, या कुछ सोना या चाँदी है और कुछ तिजारत का सामान है और इन सूरतों में साढ़े बावन तौला चाँदी की मालियत हो जाती है तो ज़कात फ़र्ज़ हो जायेगी, इसको ख़ूब समझ

लो। इस मसले की रू-से अक्सर औ़रतों पर ज़कात फ़र्ज़ है जिनपर थोड़ा बहुत ज़ेवर है। हर मुसलमान मर्द व औ़रत को चाहिये कि अपनी मालियत और ज़ेवर और दुकान के सामान और नक़द मालियत का हिसाब लगाये। यह जो बहुत-सी औ़रतें समझती हैं कि ज़ेवर इस्तेमाल करने की चीज़ है इसपर ज़कात वाजिब नहीं, यह ख़्याल सही नहीं है। इस सिलसिले में अभी एक हदीस भी आ रही है इन्शा-अल्लाह तआ़ला।

चाँदी-सोने की हर चीज़ पर ज़कात है चाहे सोने-चाँदी के बरतन हों चाहे गोटे की शक्ल में हो, चाहे ज़ेवर की सूरत में, चाहे इस्तेमाली हो चाहे यूँ ही रखा हो।

मसलाः शरई निसाब के बराबर मालियत का मालिक होने पर ज़कात फ़र्ज़ हो जाती है, शर्त यह है कि एक साल उस माल पर गुज़र जाये।

मसलाः साल के अन्दर अगर माल घट जाये और साल ख़त्म होने से पहले उतना माल फिर आ जाये कि अगर उसको बाक़ी माल में जोड़ दें तो शरई निसाब के बराबर हो जाये तो इस सूरत में ज़कात की अदायगी फ़र्ज़ हो जायेगी और नये माल के आने से साल शुरू न होगा, बल्कि जब शुरू में माल आया था उसी वक़्त से साल का हिसाब लगेगा। यह मसला उससे मुताल्लिक़ है जिसपर एक बार ज़कात की अदायगी लाज़िम हो चुकी हो।

साहिबे निसाब को ज़कात देना

मसलाः जितनी मालियत पर ज़कात फ़र्ज़ है उस क़द्र माल किसी के पास हो, चाहे उतनी मालियत का ज़रूरत से ज़ायद सामान और सोना-चाँदी हो या उतनी नक़दी बैंक में हो तो उसको ज़कात लेना

हराम है और उसको ज़कात दी जायेगी तो अदा न होगी। ज़कात लेने का हक़दार वह है जिसके पास शरई निसाब के बक़द्र माल न हो और सय्यिद न हो। बहुत-सी औरतें विधवा होती हैं, सिर्फ़ उनके विधवा होने पर नज़र करके ज़कात दे दी जाती है हालाँकि उनके पास निसाब के बराबर खुद ज़ेवर होता है, ऐसी सूरत में ज़कात अदा नहीं होती और उनको लेना भी हलाल नहीं होता। बन्दे का माल ज़कात देने से कम नहीं होता। (मिश्कात शरीफ़)

ज़कात के बारे में चाँद का साल मोतबर है

चाँद के हिसाब से माल पर एक साल गुज़र जाने से ज़कात की अदायगी फ़र्ज़ हो जाती है। अंग्रेज़ी साल का हिसाब लगाना दुरुस्त नहीं। अंग्रेज़ी साल से अदा करने में हर साल दस दिन के बाद ज़कात अदा होगी और 36 साल बाद एक साल की ज़कात कम हो जायेगी जो अपने ज़िम्मे बाक़ी रहेगी।

कितनी ज़कात अदा करे

चाँद के एतिबार से पूरा साल गुज़र जाने पर ढाई रुपये सैकड़ा या 25 रुपये प्रति हज़ार ज़कात अदा कर दे। यह चालीसवाँ हिस्सा बनता है। देखो ख़ुदा पाक ने कितना कम फ़रीज़ा रखा है और वह भी तुम्हारे लिये ही है, ख़ुदा के काम थोड़ा ही आता है, वह तो बेनियाज़ है। उसी ने तो सबको सब कुछ दिया है, तुम अपने माल का सवाब आख़िरत में ख़ुद पा लोगी, और दुनिया में भी ज़कात देने के सबब माल की हिफ़ाज़त रहेगी और माल में तरक़्क़ी होगी। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़सम खाकर फ़रमाया कि सदक़े से माल कभी कम नहीं होता।

बहुत-सी औरतें यह सवाल उठाती हैं कि ज़ेवर के अ़लावा हमारे

पास माल कहाँ है? अगर उसमें से दें तो सब ख़त्म हो जायेगा। अव्वल तो बात यह है कि शौहर से लेकर अदा कर सकती है, जब वह बेजा चोंचलों के लिये देता है और फ़ैशन के फ़ुज़ूल ख़र्चे उठाता है तो तुम्हारे कहने से तुम्हें दोज़ख़ के अज़ाब से बचाने के लिये साल भर में ढाई रुपये सैकड़ा क्यों न देगा। और अगर वह नहीं देता तो ज़ेवर बेचो। अभी-अभी हदीस से मालूम हुआ कि सदक़े से माल कम नहीं होता। अगर तुम ज़कात दोगी तो अल्लाह तआला और ज़्यादा माल देगा और ज़ेवर बढ़ेगा, मगर तुम तो अल्लाह की तरफ़ बढ़ो। मान लो ज़कात देते-देते ज़ेवर ख़त्म हो जाये तो क्या हर्ज हुआ, दोज़ख़ के अज़ाब से बच जाना और जन्नत की नेमतें मिल जाना क्या कम फ़ायदा है? अब एक सहाबी औरत का क़िस्सा सुनो।

ज़ेवर की ज़कात न देने पर सज़ा की धकमी

हदीसः (2) हज़रत अमर बिन शुऐब अपने वालिद और दादा के वास्ते से नक़ल करते हैं कि एक औरत रसूले अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आई, उसके साथ उसकी एक लड़की थी जिसके हाथ में सोने के दो मोटे-मोटे कंगन थे। आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उस औरत से दरियाफ़्त फ़रमाया कि तुम इस ज़ेवर की ज़कात अदा करती हो? अर्ज़ किया नहीं! फ़रमाया क्या तुम यह पसन्द करती हो कि इनकी वजह से क़ियामत के दिन अल्लाह तआला तुमको आग के दो कंगन पहना दे। यह सुनकर उस औरत ने वे दोनों कंगन (बच्ची के हाथ से) निकाले और आपकी ख़िदमत में पेश कर दिये और अर्ज़ किया कि ये दोनों अल्लाह व रसूल के लिये हैं। (मैं अपने पास नहीं रखती, आपको इख़्तियार है जहाँ चाहें ख़र्च फ़रमायें)।

तशरीहः हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सहाबी मर्द व औ़रत सब ही आख़िरत के बहुत फ़िक्रमन्द थे और वहाँ के अ़ज़ाब से बहुत डरते थे। देखा! एक सहाबी औ़रत ने दोज़ख़ की बात सुनकर दोनों कंगन ख़ैरात कर दिये और आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हवाले कर दिये कि जहाँ चाहें ख़ुदा की राह में ख़र्च फ़रमायें। अगरचे अ़ज़ाब से बचने की यह सूरत भी थी कि वह अब तक की ज़कात अदा कर देतीं और आइन्दा ज़कात देने की पाबन्दी करतीं लेकिन उन्होंने यह पसन्द ही न किया कि वे कंगन पास रहें, क्योंकि शायद फिर कोताही न हो जाये, इसलिये वह चीज़ पास न रखी जिससे गिरफ़्त का अन्देशा हो सके। सुब्हानल्लाह सहाबी मर्द व औ़रत कैसे दीनदार और आख़िरत के फ़िक्रमन्द थे।

नफ़्ली सदक़े की फ़ज़ीलत

हदसीः (3) हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा का बयान है कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुझे ख़िताब करते हुए बयान फ़रमाया कि (ख़ुदा की राह में) ख़र्च करती रहो और गिन-गिनकर मत रखना वरना अल्लाह तआ़ला भी तुझे गिन-गिनकर देंगे। (यानी ख़ूब ज़्यादा न मिलेगा) और माल को बन्द करके न रखना वरना अल्लाह तआ़ला (भी) अपनी बख़्शिश रोक देंगे, जहाँ तक हो सके थोड़ा-बहुत (ज़रूरतमन्दों पर) ख़र्च करती रहो।

(मिश्कात शरीफ़, बुख़ारी व मुस्लिम)

तशरीहः हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बड़ी बेटी थीं जो हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से दस साल बड़ी थीं, उन्होंने मक्का ही में इस्लाम क़बूल कर लिया था। तारीख़ लिखने वाले कहते हैं कि वह अट्ठारहवीं

मुसलमान थीं। उस ज़माने में एक मुसलमान का बढ़ जाना बहुत बड़ी बात थी, इसलिये यूँ गिना करते थे कि फ़लाँ सातवाँ मुसलमान है और फ़लाँ दसवाँ मुसलमान है, वग़ैरह वग़ैरह।

उनकी रिवायत की हुई बहुत-सी हदीसें किताबों में मिलती हैं। उनके शौहर हज़रत ज़ुबैर बिन अ़वाम रज़ियल्लाहु अ़न्हु थे जिनको आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपना 'हवारी' यानी बहुत ख़ास आदमी बताया था। उनके लड़कों में अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और उरवा बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा ने मक्के में हुकूमत क़ायम कर ली थी, जो उस वक़्त के बादशाह अ़ब्दुल मलिक बिन मरवान के ख़िलाफ़ थी। अ़ब्दुल मलिक का मशहूर ज़ालिम गवर्नर हज्जाज बिन यूसुफ़ गुज़रा है। उसने मक्का पर चढ़ाई करके हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को शहीद कर दिया था। उस वक़्त उनकी वालिदा हज़रत अ़समा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ज़िन्दा थीं। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को शहीद करके हज्जाज उनकी वालिदा के पास आया और उसने कहा कि तुमने देखा कि तुम्हारे लड़के का क्या हाल बना? यानी शिकस्त खाकर क़त्ल हुआ। हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने बिना किसी डर और भय के फ़ौरन जवाब दिया कि:

"मेरे बेटे की और तेरी जंग का ख़ुलासा मेरे नज़दीक यह है कि तूने मेरे बेटे की दुनिया ख़राब कर दी यानी उसकी दुनियावी ज़िन्दगी ख़त्म हो गयी और उसने तेरी आख़िरत ख़राब कर दी।" (मिश्कात)

क्योंकि एक बादशाह की हिमायत में पड़कर तूने एक सहाबी को शहीद कर दिया जो सही ख़िलाफ़त क़ायम किये हुए था। उस ज़माने की मुसलामन औरतें बड़ी बहादुर और दिलावर होती थीं। बात यह है कि ईमान मज़बूत हो तो दिल भी मज़बूत होता है और ज़बान भी हक़ कहते हुए लड़खड़ाती नहीं है। आपने देखा कि एक बूढ़ी औ़रत ने

हिजाज़ और इराक़ के गवर्नर को कैसा मुँह-तोड़ जवाब दिया।

माल के बारे में हुज़ूर सल्ल. की तीन नसीहतें

हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अन्हा का हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आना-जाना लगा रहता था और मसले-मसाइल दरियाफ़्त करती रहती थीं। एक बार आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने और ग़रीबों यतीमों मिस्कीनों और बेवाओं की ख़बरगीरी की तरफ़ तवज्जोह दिलाई और चार बातें इरशाद फ़रमाईं।

पहली: ख़र्च करतीं रहा करो।

दूसरी: गिन-गिनकर न रखना। यानी जमा करने के फेर में न पड़ना कि जमा कर रहे हैं और गिनते जा रहे हैं, आज इतना हुआ और कल इतना बढ़ा। जमा करने के ख़्याल में अपनी ज़रूरतें भी रोके हुए हैं और दूसरे ज़रूरतमन्दों को भी नहीं देते, यह तरीक़ा ईमान वालों का नहीं बल्कि दुनिया से मुहब्बत करने वाले ऐसा करते हैं जिनकी जान ही पैसा है, पैसे के लिये ही जीते हैं और इसी के लिये मरते हैं। एक हदीस में ऐसे लोगों को **रुपये-पैसे का गुलाम** फ़रमाया। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ऐसे लोग बहुत ना-पसन्द थे। एक बार आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

हदीसः बेमुराद हो रुपये-पैसे और चादर का गुलाम, जिसका यह हाल है कि अगर उसे मिल जाये तो राज़ी और न मिले तो नाराज़ हो जाये, ऐसे शख़्स का बुरा हो और उसके लिये बरबादी हो। और अगर उसके काँटा लग जाये तो ख़ुदा करे कोई न निकाले। (मिश्कात शरीफ़)

गिन-गिनकर न रखना का दूसरा मतलब मुहद्दिसीन ने यह बताया है कि ज़रूरतमन्द और फ़क़ीर को देते वक़्त इसलिये न गिनना

कि कहीं ज़्यादा तो नहीं जा रहा है और दिल खिंच रहा है। एक पैसा देने के लिये जेब में हाथ डाला था मगर दो पैसे का सिक्का हाथ में आ गया, अब सोच रहे हैं कि यह तो एक पैसा ज़्यादा है, फ़क़ीर की तरफ़ हाथ बढ़ने के बजाय वापस जेब में जा रहा है ताकि एक पैसे का सिक्का निकाला जाये, यह भी माल से मुहब्बत की दलील है।

फिर फ़रमाया अगर तुम गिन-गिनकर रखोगी और जमा करने की फ़िक्र में पड़ोगी या फ़क़ीर को देते वक़्त गिनती करोगी ताकि पैसा दो पैसा ज़्यादा न चला जाये तो इसके बदले में अल्लाह तआला के यहाँ से भी गिनकर मिलने लगेगा। या अगर बहुत होगा तो उसकी बरकत ख़त्म कर दी जायेगी, बे-बरकती की वजह से बहुत ज़्यादा माल ऐसा पट हो जायेगा जैसे दो-चार पैसे होते हैं।

बाज़े हज़रात ने कहा है कि "अल्लाह के यहाँ से भी गिनकर मिलने लगेगा" का मतलब यह है कि अगर तुम ग़रीबों पर ख़र्च करते वक़्त यह ख़्याल करोगी कि कहीं ज़्यादा तो नहीं चला गया तो ऐसी सूरत में अल्लाह तआला अपने दिये हुए माल का हिसाब लेते वक़्त सख़्ती फ़रमायेंगे और छान-बीन के साथ हिसाब लेंगे। फिर उस वक़्त कहाँ ठिकाना होगा। अल्लाह ने तुम्हें दिया है तुम उसकी मख़्लूक़ पर ख़र्च करो। क़ुरआन शरीफ़ में है:

तर्जुमाः अल्लाह की मख़्लूक़ के साथ अच्छा सुलूक करो जैसे अल्लाह ने तुम्हारे साथ एहसान किया है। (सूरः क़सस आयत 27)

तीसरीः यह नसीहत फ़रमाई कि जमा करके न रखना वरना अल्लाह तआला भी अपने ग़ैब के ख़ज़ाने से तुम्हें न नवाज़ेंगे और अपनी तरफ़ से देने में कमी फ़रमा देंगे। बात यह है कि अल्लाह की मख़्लूक़ पर ख़र्च करने से अल्लाह तआला के यहाँ से बहुत मिलता है और रोज़ी में बरकत और तरक़्क़ी होती है। और अगर थोड़ा हो तो

उसमें बरकत बहुत होती है।

जिन लोगों को जमा करने का ज़ौक़ होता है अपनी ज़रूरतों को भी दबाते रहते हैं, बच्चों पर ख़र्च करने में कमी करते हैं, फिर दूसरे मोहताजों को देने का सवाल ही क्या है? ऐसे लोग वे फ़राइज़ भी अदा नहीं करते जो माल से मुताल्लिक़ हैं। ज़कात, सदक़ा-ए-फ़ित्र, क़ुरबानी और बन्दों के वाजिब हुक़ूक़, माँ-बाप के ख़र्चों की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देते जिसकी सज़ा आख़िरत में बहुत बड़ी है। क़ुरआन मजीद में इरशाद है:

तर्जुमाः वह आग एसी दहकती हुई है जो खाल उतार देगी। वह उस शख़्स को बुलायेगी जिसने पीठ फेरी होगी और बेरुख़ी की होगी, और जमा किया होगा, फिर उसको उठा-उठाकर रखा होगा।

(सूरः मआरिज़ आयत 15-18)

चौथीः फ़रमाया कि थोड़ा-बहुत जो हो सके अल्लाह की राह में ख़र्च करती रहो। लफ़्ज़ "जो कुछ हो सके" बहुत आम है और हर अमीर-ग़रीब इसपर अमल कर सकता है। दर हक़ीक़त अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने का ताल्लुक़ आख़िरत की मुहब्बत से है, मालदारी से नहीं है। ग़रीब भी ख़र्च कर सकता है मगर अपनी हिम्मत और हैसियत के मुताबिक़ ख़र्च करेगा, और अमीर भी ख़र्च कर सकता है वह अपनी हैसियत के मुताबिक़ पैसा उठायेगा। दुनियावी ज़रूरतों में भी तो सब ही ख़र्च करते हैं, आख़िरत की फ़िक्र हो तो उसमें भी अमीर-ग़रीब पैसा लगाये। हदीस की शरह लिखने वाले आलिमों ने बताया है कि आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अन्हा से यह लफ़्ज़ कि "थोड़ा-बहुत जो हो सके ख़र्च करो" इसलिये फ़रमाया कि उस ज़माने में ग़ुरबत की हालत में थीं, और यह बात भी है कि शौहर के माल में से आम तौर पर थोड़ा-

बहुत ही ख़र्च करने की इजाज़त होती है।

ईद के मौक़े पर सहाबी औ़रतों का अपने-अपने ज़ेवरों में से सदक़ा करने का वाक़िआ

हदीसः (4) हज़रत अ़ब्दुर्रहमान बिन आ़बिस का बयान है कि हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से किसी ने पूछा क्या आप हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ ईद के मौक़े पर हाज़िर रहे हैं? उन्होंने जवाब दिया कि हाँ मैं आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ ईद में मौजूद था। आपने ईद की नमाज़ अदा फ़रमाई उसके बाद खुतबा दिया, फिर औ़रतों के पास तशरीफ़ लाये और उनको नसीहत फ़रमाई और (आख़िरत की बातें) याद दिलाईं और सदक़े का हुक्म फ़रमाया। उस मौक़े पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अ़न्हु भी आये थे, उनहोंने अपना कपड़ा फैला दिया और औ़रतें उनके कपड़े में अपने-अपने ज़ेवर उतार-उतार कर फेंकती रहीं, उन ज़ेवरों में मोटी-मोटी अंगूठियाँ (भी) थीं। उसके बाद आप हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अ़न्हु को साथ लेकर अपने मकान की तरफ़ रवाना हो गये। (बुख़ारी शरीफ़)

तशरीहः हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की दूसरी रिवायत में ये अल्फ़ाज़ हैं: "मैंने देखा कि आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तवज्जोह और रग़बत दिलाने पर औ़रतों ने सदक़ा देना शुरू किया और अपने कानों और हलक़ों के ज़ेवर उतार-उतार कर देती रहीं।

इससे मालूम हुआ कि बड़ी-बड़ी अंगूठियों के साथ कानों की बालियाँ झुमकियाँ और गले के हार भी उन आख़िरत से मुहब्बत रखने वाली औ़रतों ने हुज़ूरे पाक की ख़िदमत में पेश कर दिये। आप

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह सदक़ा वसूल करना आ़म ज़रूरतमन्दों पर ख़र्च करने के लिये था। आपके लिये सदक़े का माल हलाल नहीं था। वहाँ से उठकर अपने हिसाब से ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों पर ख़र्च फ़रमा दिया। इस क़िस्से से सहाबी औ़रतों की सख़ावत (यानी दान देने) का पता चला और यह मालूम हुआ कि आख़िरत की मुहब्बत और मरने के बाद मिलने वाले सवाब के मुक़ाबले में उनके नज़दीक ज़ेवर की कोई हक़ीक़त न थी। चूँकि पूरा यक़ीन था इसलिये जन्नत के ज़ेवर की तलब और रग़बत में उन्होंने बेझिझक अपने ज़ेवर अल्लाह के रास्ते में उतार कर दे दिये और इस फ़ानी दुनिया में कानों गलों और हाथों को बिना ज़ेवर के रखना पसन्द कर लिया। अल्लाह तआ़ला हमको भी ऐसे ही जज़्बात नसीब फ़रमाये। आमीन।

मसलाः यह देखना चाहिये कि ज़ेवर का मालिक शौहर है या बीवी, जो मालिक हो उसपर ज़कात की अदायगी फ़र्ज़ है। बाज़ लोग कह देते हैं कि हमने तो बीवी को दे दिया वही ज़कात की ज़िम्मेदार है हालाँकि अगर लड़ाई हो जाये या तलाक़ का मौक़ा आ जाये तो ज़ेवर वापस लेने लगते हैं, इससे मालूम हुआ कि असल मालिक मर्द है वरना वापस क्यों लेता, हाँ अगर वह ज़ेवर औ़रत ने अपने मेहर की रक़म से बनवाया है या किसी की मीरास में से उसके हिस्से में आया है या शौहर ने ख़रीद कर बिलकुल उसे दे दिया है तो उसकी ज़कात औ़रत अदा करे।

मसलाः जो ज़ेवर शौहर की मिल्कियत है उसे शौहर की इजाज़त के बिना सदक़ा करना जायज़ नहीं।

मसलाः नाबालिग़ बच्ची के लिये जो ज़ेवर बनाया गया हो अगर बच्ची ही की मिल्कियत क़रार दे दी है तो उसपर ज़कात नहीं, और

अगर वह सिर्फ़ पहनती है और मालिक माँ या बाप या और कोई दूसरा 'वली' (अभिभावक) है तो उसपर ज़कात फ़र्ज़ है, इस फ़र्क़ को ख़ूब समझ लेना चाहिये।

माँ-बाप के साथ हमदर्दी और अच्छा सुलूक करने का हुक्म

हदीसः (5) हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा का बयान है कि मेरी वालिदा (माता) उस ज़माने में मदीना मुनव्वरा आईं जबकि हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मक्का के कुरैश से मुआ़हदा कर रखा था, उस वक़्त तक वह मुसलमान न हुई थीं बल्कि मुश्रिक थीं। मैंने अ़र्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी वालिदा आई हैं जो मुझसे मिलने की उम्मीदवार हैं, क्या मैं उनसे अच्छा बर्ताव और हमदर्दी करूँ (और उनको अपनी हैसियत व हिम्मत के मुताबिक़ कुछ दे दूँ)? आपने फ़रमाया हाँ उनके साथ हमदर्दी और अच्छा सुलूक करो।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

तशरीहः हज़रत असमा और उनके वालिद हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा तो बहुत पहले मुसलमान हो गये थे बल्कि हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु तो बालिग़ मर्दों में सबसे पहले मुसलमान हैं, लेकिन हज़रत असमा की वालिदा उस वक़्त तक मुसलमान न हुई थीं जिस वक़्त का यह क़िस्सा है। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मक्का के काफ़िरों के तकलीफ़ पहुँचाने से तंग आकर अपने असल वतन और बाप दादाओं के देश यानी मक्का मुअ़ज़्ज़मा को छोड़कर मदीना मुनव्वरा तशरीफ़ ले गये जिसको **हिजरत** कहते हैं। काफ़िरों ने वहाँ भी चैन न लेने दिया और लड़ाइयाँ लड़ते रहे, जिसके नतीजे में **जंगे बदर** और **जंगे उहुद** हुईं। इन दोनों जंगों के क़िस्से

मशहूर हैं और इस्लामी तारीख़ में इनकी बड़ी अहमियत है। जब मुसलमानों ने काफ़िरों के मुक़ाबले में जवाबी कार्रवाई की तो काफ़िरों के दाँत खट्टे कर दिये और उनको लेने के देने पड़े गये। अगरचे मुसलमान उस ज़माने में बहुत ही कम थे और काफ़िरों की तायदाद बहुत ज़्यादा थी मगर मुसलमानों की हिम्मत बहुत ज़्यादा और ईमान मज़बूत पक्का था, अल्लाह के लिये मरने से मुहब्बत करते थे, इसलिये काफ़िर लोग उनको नीचा न दिखा सके और ख़ुद मजबूर होकर दस साल के लिये ख़ास-ख़ास शर्तों पर सुलह करने पर तैयार हो गये। यह सुलह सन् सात (7) हिजरी में हुई। उन शर्तों में यह भी तय हुआ था कि दोनों फ़रीक़ों में से कोई फ़रीक़ एक-दूसरे पर हमला न करेगा। चूँकि यह सुलह हुदैबिया के स्थान में हुई इसलिये "सुलह हुदैबिया" के नाम से मशहूर है। सुलह हो जाने के बाद दोनों फ़रीक़ों को अमन मिल जाने के सबब आपस में मिलना-जुलना और एक-दूसरे के पास आना-जाना शुरू हुआ। मज़हब के लिहाज़ से अगरचे दुश्मनी थी मगर दोनों फ़रीक़ों के आपस में ख़ून के रिश्ते थे जिनकी वजह से तबई तौर पर मुलाक़ातों को जी चाहता था। हाल यह था कि बेटा काफ़िर है तो बाप मुसलमान, और बाप काफ़िर है तो बेटा मुसलमान, माँ काफ़िर बेटी मोमिन, एक भाई हक़ दीन पर दूसरा शिर्क के दीन पर, एक बुतों का पुजारी दूसरा मालिके हक़ीक़ी का इबादत करने वाला। जो मुसलमान थे सारा धन मक्का में छोड़कर, रिश्तेदारी के तक़ाज़ों को पीठ पीछे डालकर मदीना मुनव्वरा में आकर बस गये थे क्योंकि उनके दिल में अल्लाह बस गया था।

सुलह हुदैबिया के ज़माने में जब अमन हुआ और मुलाक़ात का मौक़ा निकला तो बाज़ लोगों ने अपने अज़ीज़ों और रिश्तेदारों से मिलने का इरादा किया। उस ज़माने में हज़रत असमा रज़ियल्लाहु अन्हा

की वालिदा मक्का से मदीने में आईं। हदीस में "मक्का के कुरैश से मुआहदा कर रखा था" का यही मतलब है। अब तक मुसलमान न हुई थीं और चूँकि ज़रूरतमन्द थीं इसलिये उनको ख़्वाहिश थी कि बेटी से कुछ मिले, लेकिन बेटी अब सिर्फ़ बेटी न थी बल्कि हक़ की मतवाली और ईमान की रखवाली थी। सोचा कि माँ अगरचे माँ है मगर है तो मुश्रिक, इसपर ख़र्च करना अल्लाह की रिज़ा के ख़िलाफ़ तो नहीं? दिल में खटक हुई, नबी पाक की ख़िदमत में हाज़िरी दी और अ़र्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी वालिदा आयी हैं, उनकी तमन्ना है कि मैं उनकी माली इमदाद करूँ। इस बारे में जो कुछ इरशाद हो अ़मल करूँ। नबी-ए-पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि उनकी मदद करो और 'सिला रहमी' (यानी रिश्तेदारी की वजह से अच्छे सुलूक) का बर्ताव करो।

दर हक़ीक़त इस्लाम अ़दल व इन्साफ़ का मज़हब है। कुफ़्र की वजह से जो मज़हबी दुश्मनी हो उसके होते हुए माँ-बाप की ख़िदमत और माली इमदाद का भी सबक़ देता है। माँ-बाप के कहने से कुफ़्र व शिर्क इख़्तियार करना या कोई दूसरा बड़ा गुनाह करने का तो इख़्तियार नहीं है मगर उनकी ख़िदमत करना और ज़रूरतमन्द हों तो उनपर ख़र्च करना ज़रूरी है अगरचे माँ-बाप काफ़िर हों। कुरआन मजीद में इरशाद है:

तर्जुमाः अगर वे दोनों (माँ-बाप) तुझे मजबूर करें इस बात पर कि तू मेरे साथ उन चीज़ों को शरीक करे जिनका तुझे इल्म नहीं तो उनकी फ़रमाँबरदारी न करना और उनके साथ दुनिया में अच्छे तरीक़े से गुज़ारा करना, और उसकी राह पर चलना जो मेरी तरफ़ रुख़ करे।

(सूरः लुक़मान आयत 15)

माँ-बाप का बड़ा हक़ है, मगर आजकल के लड़के और लड़कियाँ ऐसे हो गये हैं कि शादी होते ही माँ-बाप से इस तरह ताल्लुक़ ख़त्म कर लेते हैं कि जैसे जान-पहचान ही न थी। अल्लाह हिदायत दे।

अपनी औलाद पर ख़र्च करने का सवाब

हदीसः (6) हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा का बयान है कि मैंने अ़र्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मुझे सवाब मिलेगा अगर मैं (अपने पहले शौहर) अबू सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु के बच्चों पर ख़र्च करूँ कि वह तो मेरी ही औलाद है। (क्या अपनी औलाद पर भी ख़र्च करने से अज्र व सवाब मिलता है)। आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि उनपर ख़र्च करती रहो तुमको उनपर ख़र्च करने का अज्र मिलेगा। (मिश्कात, बुख़ारी)

तशरीहः हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पाक बीवी हैं। उनकी रिवायत की हुई सैकड़ों हदीसें किताबों में मिलती हैं। उन्होंने भी दीन का इल्म ख़ूब फैलाया। उनका नाम हिन्दा था। उनके पहले शौहर अबू सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु थे। दोनों मियाँ-बीवी हिजरत से पहले मक्का मुअ़ज़्ज़मा ही में मुसलमान हो गये थे। इस्लाम की राह में दोनों ने बहुत तकलीफ़ें उठाईं। पहले दोनों ने इस्लाम की ख़ातिर 'हबशा'' को हिजरत की, बाद में मदीना मुनव्वरा को हिजरत की, लेकिन इस बार दोनों एक साथ हिजरत न कर सके। उस वक़्त मक्का में काफ़िरों का ज़ोर था। जब दोनों मियाँ-बीवी हिजरत के लिये निकले तो हज़रत उम्मे सलमा को मायके वालों ने जाने न दिया। उसके एक साल बाद वह हिजरत कर सकीं। उनका एक बच्चा सलमा नाम का था। उसी की वजह से उनको उम्मे सलमा (यानी सलमा की माँ) और बच्चे के बाप

को अबू सलमा (सलमा का बाप) कहते थे। अ़रब में इसका बहुत दस्तूर था। इसको 'कुन्नियत' कहते हैं। कई बार असल नाम भूल-भुलैयाँ हो जाता था और कुन्नियत ही से आदमी को जानते थे। सन् 4 हिजरी में जब उनके शौहर अबू सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु वफ़ात पा गये तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इद्दत गुज़र जाने के बाद उनसे निकाह फ़रमा लिया। जब यह आपके के घर में आईं तो पहले शौहर के बच्चे भी साथ आ गये। आँ-हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनकी परवरिश फ़रमाई। हज़रत उम्मे सलमा भी अपने ज़ाती माल में से उन बच्चों पर ख़र्च करती थीं। उनको ख़्याल हुआ कि मैं जो उनपर ख़र्च करती हूँ तो गोया औलाद का हक़ अदा करती हूँ इसमें शायद सवाब न हो। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से इस बारे में सवाल किया तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया तुम ख़र्च करती रहो ज़रूर सवाब मिलेगा, क्योंकि औलाद पर ख़र्च करना भी सवाब है।

बात यह है कि अल्लाह तआ़ला बड़े मेहरबान हैं। हलाल माल मुसलमान मर्द व औ़रत चाहे अपनी ज़ात पर ख़र्च करे चाहे औलाद पर, चाहे माँ-बाप पर चाहे दूसरे रिश्तेदारों पर, चाहे दूसरे पड़ोसियों और मोहताजों पर उसके ख़र्च करने में बड़ा सवाब मिलता है। अल्लाहु अकबर! अपनों ही पर ख़र्च करो और सवाब भी पाओ। अल्लाह तआ़ला का कितना बड़ा करम है। कुरआन पाक में इरशाद है:

तर्जुमा: सो जो शख़्स अपने रब पर ईमान ले आयेगा तो उसको न किसी कमी का अन्देशा होगा और न ज़्यादती का।

(सूरः जिन्न आयत 13)

हज़रत आयशा ने एक खजूर सदक़े में दे दी

हदीसः (7) हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा का बयान है कि एक औरत मेरे पास आई जिसके साथ उसकी दो बच्चियाँ थीं। उसने मुझसे सवाल किया। मेरे पास एक खजूर के सिवा कुछ न था। मैंने वह खजूर ही उसको दे दी। उसने खजूर के दो टुकड़े करके दोनों बच्चियों को एक-एक टुकड़ा दे दिया और खुद ज़रा भी कुछ न खाया। उसके बाद जैसे ही वह निकली रसूले खुदा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम घर में तशरीफ़ ले आये। मैंने आपको पूरा क़िस्सा सुनाया। आपने फ़रमाया कि जो शख़्स (मर्द व औरत) लड़कियों (की देखभाल और पालन-पोषण) के साथ मुब्तला किया गया (यानी उनकी ख़िदमत और परवरिश उसके ज़िम्मे पड़ गयी) और फिर उसने उनके साथ अच्छा सुलूक किया तो ये लड़कियाँ दोज़ख़ की आग से बचाने के लिये उसके वास्ते आड़ बन जायेंगी। (मिश्कात, बुख़ारी व मुस्लिम के हवाले से)

तशरीहः हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास एक औरत सवाल करने आई। एक खजूर के सिवा कुछ मौजूद न था। उन्होंने एक खजूर ही दे दी, कम-ज़्यादा का ख़्याल न किया। दर हक़ीक़त इख़्लास के साथ दिया जाये तो एक खजूर और एक पैसा भी बहुत है। क़ुरआन शरीफ़ में फ़रमायाः

तर्जुमाः जो कुछ भी अपने लिये पहले से भेज दोगे उसे अल्लाह के पास पा लोगे। (सूरः मुज़्ज़म्मिल आयत 20)

एक हदीस में है कि सरवरे आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि खजूर के बराबर भी हलाल कमाई से जो शख़्स सदक़ा दे दे तो अल्लाह तआला उसको बड़ी क़द्र के साथ क़बूल फ़रमाते हैं। फिर जिसने सदक़ा दिया है उसके लिये उस सदक़े को

बढ़ाते रहते हैं यहाँ तक कि वह पहाड़ के बराबर हो जाता है।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

बन्दे ने दिया खजूर के बराबर और ख़ुदा रहीम व करीम ने इनायत फ़रमाया पहाड़ के बराबर। ऐसा दाता अल्लाह ही है, सदक़े से कभी पीछे न रहो। इससे ज़रूरतमन्द की ज़रूरत भी पूरी होती है और सदक़ा करने वाले को सवाब भी मिलता है। कितना सवाब मिलता है इसका अन्दाज़ा अभी मालूम हुआ।

लड़कियों की परवरिश की फ़ज़ीलत

हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा की इस हदीस में जहाँ सदक़े का बयान है वहीं लड़कियों की परवरिश की भी फ़ज़ीलत और बड़ाई ज़िक्र की गई है। लड़की कमज़ोर वर्ग है और इससे कमाकर देने की उम्मीदें भी जुड़ी हुई नहीं होती हैं। इसलिये लड़कियाँ बहुत-से ख़ानदानों में जुल्म व सितम भरी ज़िन्दगी गुज़ारती हैं। उनके वाजिब हुकूक़ भी ज़ाया कर दिये जाते हैं कहाँ यह कि उनके साथ बेहतर सुलूक और अच्छा बर्ताव किया जाये। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने लड़कियों की परवरिश करने और ख़ैर-ख़बर रखने वाले को ख़ुशख़बरी (शुभ-सूचना) सुनाई कि ऐसा शख़्स दोज़ख़ से महफ़ूज़ रहेगा और लड़कियों की यह ख़िदमत उसके लिये दोज़ख़ से बचाने के लिये आड़ बन जायेगी।

अपनी लड़की हो या किसी दूसरे मुसलमान की यतीम बच्ची हो, उन सबकी परवरिश की यही फ़ज़ीलत है। बहुत-सी औरतें सौतेली लड़कियों पर जुल्म करती हैं जिसका निकाह होने में किसी वजह से देर हो, और बाज़े मर्द नई बीवी की वजह से पहली बीवी की औलाद पर जुल्म करते हैं, ऐसे लोगों को इस हदीस से सबक़ हासिल करना ज़रूरी

है।

हज़रत सुराक़ा बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि तुम्हें सबसे अफ़ज़ल सदक़ा न बता दूँ? फिर खुद ही जवाब दिया कि सबसे अफ़ज़ल सदक़ा यह है कि तुम अपनी लड़की पर ख़र्च करो जो तलाक़ की वजह से या बेवा (विधवा) होकर तुम्हारे पास (शौहर के घर से) वापस आ गयी और तुम्हारे अ़लावा कोई उसके लिये कमाई करने वाला नहीं है।

एक और हदीस में सरवरे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि जिसने तीन लड़कियों या तीन बहनों के ख़र्चे बरदाश्त किये और उनको अदब सिखाया और रहम और शफ़क़त का बर्ताव किया यहाँ तक कि वे उसके ख़र्च से बेनियाज़ हो गईं (यानी उनको उसके ख़र्च देने की ज़रूरत न रही) तो अल्लाह तआ़ला उसके लिये जन्नत वाजिब फ़रमा देंगे। एक शख़्स ने अ़र्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! अगर दो लड़कियाँ या दो बहनें हों जिनकी परवरिश की हो तो इस बारे में क्या हुक्म है? फ़रमाया उसके लिये भी यही फ़ज़ीलत है। रिवायत करने वाले कहते हैं कि अगर एक लड़की के बारे में सवाल किया जाता तो आप एक के लिये भी यही फ़ज़ीलत बताते। (मिश्कात)

रिश्तेदारों के साथ अच्छे बर्ताव की फ़ज़ीलत

हदीसः (8) हज़रत मैमूना रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि मैंने एक बाँदी नबी पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में आज़ाद कर दी, फिर इसका ज़िक्र आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से किया, आपने फ़रमाया (आज़ाद करने के बजाय) अगर अपने मामूँ को दे देती तो यह तेरे लिये ज़्यादा अज्र व सवाब का सबब होता। (मिश्कात)

तशरीहः हज़रत मैमूना रज़ियल्लाहु अन्हा 'उम्मुल मोमिनीन' हैं और हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की पाक बीवी हैं। उनका पहला नाम बर्रह था। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बदल कर मैमूना रख दिया। इनके अलावा और भी बाज़ सहाबी औरतों का नाम बर्रह था आपने बदल कर किसी का नाम ज़ैनब और किसी का जवैरिया रख दिया। लफ़्ज़ 'बर्रह' का तर्जुमा है- "नेक औरत" यह नाम आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को इसलिये पसन्द न था कि इसमें बड़ाई और अपनी तारीफ़ निकलती है। जब किसी ने दरियाफ़्त किया कि कौन हो? और उसने जवाब दिया कि 'बर्रह' यानी नेक हूँ, तो इसका मतलब यह निकला कि अपने नेक होने का दावा कर दिया। एक बार एक औरत का यही नाम बदलते हुए आपने फ़रमाया किः

"अपनी पाकबाज़ी का दावा न करो। अल्लाह तआला को ख़ूब मालूम है कि नेक कौन है। (मिश्कात शरीफ़, बाबुल असामी)

हज़रत मैमूना रज़ियल्लाहु अन्हा की रिवायत की हुई बहुत-सी हदीसें हदीस की किताबों में मिलती हैं। ऊपर जो हदीस लिखी है उसका ख़ुलासा यह है कि हज़रत मैमूना रज़ियल्लाहु अन्हा ने एक बाँदी आज़ाद कर दी थी। चूँकि गुलाम और बाँदी आज़ाद करने का बहुत बड़ा सवाब है इसलिये उन्होंने यह समझकर कि नेकी में मश्विरे की क्या ज़रूरत है? हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से मश्विरा न किया। आज़ाद करने के बाद जब आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से तज़किरा किया तो आपने फ़रमाया कि तुम्हारे मामूँ ज़रूरतमन्द हैं, आज़ाद करने के बजाय हदिये के तौर पर उन लोगों को यह बाँदी दे देना बेहतर था जिससे सवाब ज़्यादा होता।

असल बात यह है कि नेकी करने के लिये भी बड़ी समझ की

ज़रूरत है, मगर दीनी समझ होनी चाहिये जो ख़ुदा के नेक बन्दों और दीन पर चलने वालों और दीनी किताबों से हासिल होती है। अगर इन्सान में दीनी समझ हो तो ज़्यादा से ज़्यादा सवाब कमा सकता है। शैतान की यह कोशिश होती है कि कोई मुसलमान मर्द व औरत नेकी न करने पाये, लेकिन अगर उसने हिम्मत बाँध ही ली और नेक काम करना तय ही कर लिया तो अब शैतान की कोशिश यह होगी कि उसकी नेकी कमज़ोर और घटिया क़िस्म की हो। कहीं नीयत ख़राब कर देता है, कहीं किसी के साथ अच्छा सुलूक करने के बाद एहसान जताने पर उभार देता है, और भी शैतान के बहुत-से दाव-पेच हैं। अल्लाह तआला हम सबको महफ़ूज़ रखे।

रिश्तेदारों में ख़र्च करने का दोहरा सवाब

इस हदीस से मालूम हुआ कि अपने अज़ीज़ों और क़रीबी लोगों की ज़रूरतों का ख़्याल रखना और उनको देना-दिलाना बहुत सवाब की बात है। बहुत-से लोग सदक़ा और ख़ैरात के नाम से ग़रीबों को तो बहुत कुछ देते हैं, क्योंकि उसमें नाम भी होता है। दूसरे लोग सवाल करने आ जाते हैं और अपने लोग ग़ैरत और आबरू की वजह से सवाल नहीं करते लिहाज़ा उनकी हाजतें और ज़रूरतें रुकी रहती हैं हालाँकि अपने अज़ीज़ों (रिश्तेदारों) पर ख़र्च करने से दो सवाब होते हैं- एक सदक़ा करने का, दूसरा अज़ीज़ों की ख़बर लेने और ख़िदमत करने का। चुनाँचे नबी पाक का इरशाद है:

"मिस्कीन को सदक़ा देना सिर्फ़ एक सदक़ा (ही) है और रिश्तेदार पर सदक़ा करने में दोहरा सवाब है, क्योंकि यह सदक़ा भी है और रिश्तेदारी के हुक़ूक़ की देखभाल भी।" (मिश्कात शरीफ़)

यहाँ पहुँचकर यह बात बता देना बहुत ज़रूरी है कि सदक़े को

सदक़ा व ख़ैरात बताकर देना ज़रूरी नहीं है। अगर अपने किसी अ़ज़ीज़ (रिश्तेदार) को सदक़े के नाम से कुछ देंगे तो वह न लेगा, और उसका दिल भी बुरा होगा, इसलिये हदिये के नाम से दीजिये, बल्कि हदिये का लफ़्ज़ बोलना भी ज़रूरी नहीं, सिर्फ़ यह कह दीजिये कि यह कुछ पैसे हैं ख़र्च कर लेना, या कपड़े बना दीजिये, या और किसी तरह से उनकी जायज़ ज़रूरत में ख़र्च कर दीजिये। ज़कात की रक़म का भी यह मसला है कि अपने अ़ज़ीज़ों को देने से दोहरा सवाब होता है। अलबत्ता अपनी औलाद और औलाद की औलाद को जहाँ तक सिलसिला चले, और माँ-बाप और दादा-परदादा, नाना-परनाना, दादी-परदादी, नानी-परनानी को ज़कात देने से ज़कात अदा न होगी। और शौहर व बीवी भी एक-दूसरे को अपनी ज़कात नहीं दे सकते। और दूसरे अ़ज़ीज़ों (रिश्तेदारों) जैसे बहनों, भाइयों, भतीजों, भान्जों, भान्जियों और फूफी व ख़ाला व चचा व सास ससुर वग़ैरह को ज़कात दी जा सकती है। ज़कात की अदायगी के लिये भी यह ज़रूरी नहीं है कि जिसे दी जाये उसे बता दिया जाये, बल्कि हदिया और क़र्ज़ बताकर भी दे सकते हैं, हाँ अपने दिल में ज़कात की नीयत कर लें और देख लें कि जिसको दे रहे हैं किसी एतिबार से वह 'साहिबे निसाब' नहीं और सैयद भी नहीं है।

यह भी समझ लेना चाहिये कि ज़कात तब अदा होगी जब ज़कात के हक़दार को ज़कात का माल देकर मालिक बना दिया जाये। अगर उसको न दिया और ऊपर-से-ऊपर उसका क़र्ज़ अदा कर दिया या फ़ीस अदा कर दी तो ज़कात अदा न होगी। हाँ माल ख़र्च करने का सवाब मिल जायेगा।

उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब रज़ि. दस्तकारी से पैसे हासिल करके सदक़ा करती थीं

हदीसः (9) हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बाज़ी बीवियों ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! आपकी वफ़ात के बाद हम में से कौन-सी बीवी सबसे पहले आपसे जाकर मिलेगी। (यानी सबसे पहले किसकी वफ़ात होगी)। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया तुम में जिसके हाथ सबसे ज़्यादा लम्बे हैं (वह सबसे पहले इस दुनिया से रुख़्सत होगी, दरियाफ़्त करने वाली बीवियों ने इस बात का ज़ाहिरी मतलब समझा और) एक बाँस लेकर सबके हाथ नापने लगीं, परिणाम स्वरूप हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अन्हा के हाथ सबके हाथों से ज़्यादा लम्बे निकले (और यही समझ लिया गया कि सबसे पहले हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अन्हा की वफ़ात होगी, लेकिन हुआ यह कि सबसे पहले हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अन्हा ने वफ़ात पाई, लिहाज़ा) अब पता चला कि (सबसे पहले वफ़ात पाने वाली के हाथों के लम्बे होने का मतलब यह न था कि नापने में हाथ लम्बे होंगे बल्कि लम्बे हाथों का मक़सद ज़्यादा सदक़ा करना था। सबसे पहले हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अन्हा की वफ़ात हुई। वह सदक़ा करने को (दूसरी बीवियों के मुक़ाबले में ज़्यादा) पसन्द करती थीं।

तशरीहः हज़रत सौदा और हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अन्हुमा भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बीवियों में से थीं। हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अन्हा से मक्का ही में हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अन्हा की वफ़ात के बाद आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का निकाह हो गया था। दूसरी बीवियों के मुक़ाबले में उनके हाथ लम्बे

थे। हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की फूफीज़ाद बहन थीं। पहले उनका निकाह हज़रत ज़ैद बिन हारसा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से हुआ था। आपस में निबाह न हुआ तो उन्होंने तलाक़ दे दी। उनकी तलाक़ और इद्दत के बाद अल्लाह-पाक ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा का निकाह कर दिया था। सूरः अहज़ाब में फ़रमायाः

तर्जुमाः "फिर जब ज़ैद से उसका दिल भर गया तो हमने आप सल्ल. से निकाह कर दिया। (सूरः अहज़ाब आयत 37)

इसी वजह से हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा दूसरी बीवियों के मुक़ाबले में फ़ख़्र के तौर पर फ़रमाया करती थीं कि तुम्हारा निकाह तुम्हारे सरपरस्तों और रिश्तेदारों ने किया और मेरा निकाह अल्लाह तआ़ला ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से किया। उनसे सन् 5 हिजरी में आपका निकाह हुआ और आपकी वफ़ात के बाद सबसे पहले सन् 20 या 21 हिजरी में उनकी वफ़ात हुई। उनकी रिवायत की हुई हदीसें भी हदीस शरीफ़ की किताबों में मिलती हैं। हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने उनसे बाज़ रिवायतें बयान की हैं।

नोटः हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा के ये सब हालात 'अल इस्तीआ़ब' और 'अल इसाबा' से लिये गये हैं।

हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा के बारे में हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने फ़रमायाः

"कोइ औ़रत दीनदारी और परहेज़गारी और ख़ुदा से डरने और सच्चाई और रिश्तेदारों से अच्छा सुलूक करने और सदक़ा करने में ज़ैनब रज़ि. से बढ़कर न थी। सदक़े के ज़रिये अल्लाह तआ़ला की नज़दीकी हासिल करने के लिये ख़ूब मेहनत से माल हासिल करती थीं और इसमें उनसे बढ़कर कोई औ़रत न थी।" (अल इस्तीआ़ब)

इस ऊपर बयान हुई इबारत को ग़ौर से पढ़ो और देखो कि यह एक सौतन की गवाही है। इससे जहाँ हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा के दीनी कमालात ज़ाहिर हुए वहाँ हज़रत आ़यशा की सच्चाई बे-नफ़्सी भी मालूम हुई। अपनी सौतन के कमालात का इक़रार करना बहुत बड़ी बात है। आजकल की औ़रतें ज़रा सीने पर हाथ रखकर सोचें कि उनमें हक़ बात कहना और बे-नफ़्सी कहाँ तक है, ख़ासकर अपनी सौतन के बारे में या जिससे कीना-कपट हो उसके बारे में क्या तारीफ़ का कोई कलिमा कह सकती हैं। हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा को सदक़ा करने की हिर्स थी और इस हिर्स को पूरा करने के लिये दस्तकारी के ज़रिये माल हासिल करती थीं और उससे सदक़ा दिया करती थीं। आजकल की औ़रतें तो सैकड़ों-हज़ारों की मालियत में से भी फूटी कौड़ी देने को तैयार नहीं। एक वह भी औ़रत ही थी जिसके पास पैसा न हुआ तो दस्तकारी से कमाकर सदक़ा कर दिया। रज़ियल्लाहु अ़न्हा।

हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा की दूसरी सौतन उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा की गवाही भी सुन लो, वह फ़रमाती हैं:

"ज़ैनब नेक औ़रत थीं, पूरी-पूरी रात नमाज़ में खड़ी रहती थीं और ख़ूब अधिकता के साथ रोज़े रखती थीं और दस्तकार भी थीं। उससे माल हासिल करके सब सदक़ा कर देती थीं। (अल इसाबा)

नबी करीम की पाक बीवियों का आपस में हाथ नापना कि किसके हाथ ज़्यादा लम्बे हैं

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बीवियों नें जब पूछा कि हम में से आपके बाद सबसे पहले कौन आख़िरत को रवाना होगी? तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जिसके

हाथ सब में ज़्यादा लम्बे हैं इस दुनिया से रवाना होने में पहले उसी का नम्बर आएगा। यह बात बतौर निशानी और भविष्यवाणी के फ़रमाई थी। इस बात का ज़ाहिरी मतलब समझकर आपस में हाथ नापने लगीं। हाथ नापे तो हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के हाथ सबसे ज़्यादा लम्बे निकले। फ़िर जब हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा की वफ़ात पहले हुई तो भेद खुला और हाथों की लम्बाई का मतलब समझ में आया।

बात यह है कि जो सख़ी (दानवीर) होता है हक़ीक़त में उसी के हाथ लम्बे होते हैं जो ख़ैर-ख़ैरात के वक़्त ज़रूरतमन्दों की तरफ़ बढ़ते हैं। एक हदीस में है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि बख़ील (कन्जूस) और सदक़ा करने वाले की मिसाल ऐसी है जैसे दो शख़्स लोहे के कुर्ते यानी ज़िरहें पहने हुए हों (जिनको पहले ज़माने में लड़ाई में पहनकर जाते थे और लोहे के टुकड़ों से बनाई होती थी) और ये दोनों कुर्ते इतने तंग हों कि हाथ उनके हंस्लियों और छातियों से चिपके हों। जब भी सदक़ा करने वाला सदक़ा करने लगता है तो वह लोहे का कुर्ता खुलता चला जाता है (और उसका हाथ बढ़ता चला जता है) और जब बख़ील सदक़ा करने का इरादा करता है तो उसका हाथ सिकुड़ जाता है और लोहे के कुर्ते का हर कड़ा मज़बूती से अपनी जगह पर जाम हो जाता है। (बुख़ारी व मुस्लिम)

बीबियो! तुम सख़ी बनो। सदक़ा करने की आ़दत डालो। जो कुछ बचे आख़िरत के लिये भेजती रहो जब वहाँ जाओगी तो वहाँ उसे पा लोगी। जैसे कोई शख़्स प्रदेस में जाकर कमाई करता है और अपने घर मनी-आर्डर से रक़म भेजता रहता है। यह दुनिया प्रदेस है और आख़िरत हमारा देस है। जब कभी ज़रूरतमन्द के हाथ पर हम इख़्लास और नेक-नीयती के साथ कोई रुपया-पैसा रखते हैं तो अपने देस के

लिये मनी-आर्डर करते हैं, ख़ूब समझ लो।

हज़रत ज़ैनब रज़ि. यतीमों और बेवाओं का ख़ास ख़्याल रखती थीं

हज़रत अ़ता का बयान है कि हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा का सालाना वज़ीफ़ा (वार्षिक पेंशन) बैतुलमाल (इस्लामी सरकारी ख़ज़ाने) से हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने 12 हज़ार दिर्हम मुक़र्रर किया था जिसे उन्होंने सिर्फ़ एक साल क़बूल किया और लेने के साथ ही अपने अ़ज़ीज़ों और ज़रूरतमन्दों में तक़सीम कर दिया। यह वाक़िआ़ सुनकर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फिर से एक हज़ार की रक़म भेजी और फ़रमाया कि इसको अपनी ज़रूरतों के लिये रखना। हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने उसको भी तक़सीम फ़रमा दिया। मौत से पहले वसीयत फ़रमाई कि मैंने अपने लिये कफ़न तैयार किया है और एक कफ़न हज़रत उमर अपने पास से भेजेंगे लिहाज़ा एक कफ़न सदक़ा कर देना चुनाँचे उनकी बहन ने वह कफ़न सदक़ा कर दिया जो उन्होंने ख़ुद तैयार किया था। जब वफ़ात हो गयी तो हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने फ़रमायाः

"ज़ैनब दुनिया से इस तरह रुख़्सत हो गयी कि अच्छे अख़्लाक़ के सबब उसकी तारीफ़ की जाती है और इबादत गुज़ारी में रुख़्सत हुई और यतीमों और बेवाओं को घबराहट में डाल गयी क्योंकि उनपर ख़र्च करती थी।"

शौहर को कमाने का और बीवी को ख़र्च करने का सवाब मिलता है

हदीसः (10) हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से रिवायत है

कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब औ़रत अपने (शौहर के) खाने में से ख़र्च करे और बिगाड़ का तरीक़ा इख़्तियार करने वाली न हो तो उसको ख़र्च करने की वजह से सवाब मिलेगा और शौहर को कमाने की वजह से सवाब मिलेगा। और जो ख़ज़ानची है जिसके पास रक़म और माल सुरक्षित रहता है अगरचे वह मालिक नहीं है मगर उस माल में से मालिक के हुक्म के मुताबिक़ जब अल्लाह की राह मे ख़र्च करेगा तो उसको भी उसी तरह से सवाब मिलता है (जैसे मालिक को मिला। ग़रज़ एक माल से तीन शख़्सों को सवाब मिल गया- कमाने वाला, उसकी बीवी जिसने सदक़ा किया और उसका ख़ज़ानची और कैशियर जिसने माल निकाल कर दिया) और एक की वजह से दूसरे के सवाब में कोई कमी न होगी, यानी सवाब बटकर नहीं मिलेगा बल्कि हर एक को अपने अ़मल का पूरा सवाब दिया जाएगा। (मिश्कात शरीफ़, बुख़ारी व मुस्लिम के हवाले से)

तशरीहः जो शख़्स कमाकर लाया है उसके माल से सदक़ा दिया जाये तो उसको सवाब होगा लेकिन उसकी बीवी जो उस माल में से सदक़ा देगी वह भी सवाब पायेगी। बहुत-सी औ़रतें तबीयत की कन्जूस होती हैं, अगर शौहर किसी ग़रीब को देना चाहता है तो बुरा मानती हैं और मुँह बनाती हैं। अगर उनके पास कुछ रखा हो और शौहर किसी को देने के लिये कहे तो बुरे दिल से निकाल कर दती हैं। मालूम होता है कि जैसे रुपये के साथ कलेजा निकला आ रहा है, भला ऐसा करके अपना सवाब खोने से क्या फ़ायदा? बाज़ नेकबख़्त लोग किसी ज़रूरतमन्द का खाना मुक़र्रर करना चाहते हैं मगर बीवी आड़े आ जाती है। अगर शौहर ने मुक़र्रर कर ही दिया तो हर दिन खाना निकालते वक़्त झिकझिक करती हैं जिससे शौहर को भी तकलीफ़ होती है और खाना लेने वाले का भी दिल दुखता है और अपना सवाब भी

खोती हैं।

हदीस शरीफ़ में शौहर के माल से औरत के सदक़ा-ख़ैरात करने का सवाब बताते हुए **"बिगाड़ की राह पर चलने वाली न हो"** का लफ़्ज़ बढ़ाया है। इस लफ़्ज़ का मतलब बहुत आम है जो बहुत-सी बातों को शामिल है। जैसे यह कि शौहर की इजाज़त के बग़ैर उसके माल में से ख़र्च करती हो। इजाज़त के लिये साफ़ ज़बानी इजाज़त होना ज़रूरी नहीं है, अगर यह मालूम है कि शौहर ख़र्च करने पर दिल से राज़ी है तो यह भी इजाज़त के दर्जे में है। और यह भी बिगाड़ की राह है कि अपने रिश्तेदारों और अज़ीज़ों को नवाज़ती हो और शौहर के रिश्तेदार और क़रीबी हज़रात, माँ-बाप और आल-औलाद (ख़ासकर पहली बीवी के बच्चों को) ख़र्च से परेशान रखती हो। या जैसे सवाब समझकर बिद्अतों पर ख़र्च करती हो, या वह चीज़ ख़र्च करती हो जो मालियत के एतिबार से ज़्यादा है उसका ख़र्च करना शौहर को खल जाता हो। ज़्यादा माल के ख़र्च में साफ़ इजाज़त की ज़रूरत है। बहुत-सी औरतों को सदक़े का जोश होता है मगर मर्द की इजाज़त का ध्यान नहीं रखती हैं यह ग़लती है, हाँ अपना ज़ाती माल हो तो शौहर की इजाज़त की पाबन्दी नहीं मगर मश्विरा कर लेना उस सूरत में भी मुफ़ीद (लाभदायक) है क्योंकि मर्दों को समझ ज़्यादा होती है।

एक औरत ने अर्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! अपने बापों और बेटों और शौहरों के मालों में से क्या कुछ ख़र्च करना (यानी सदक़ा करना और हदिया लेना-देना) हमारे लिये हलाल है? आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"हरी गीली चीज़ (उनकी इजाज़त के बग़ैर भी) खा लिया करो और हदिया दे दिया करो।"

क्योंकि उमूमन ऐसी चीज़ों में से ख़र्च करने की इजाज़त होती है,

हाँ अगर साफ़ मना कर दें तो रुक जाना। हरी गीली चीज़ से वे चीज़ें मुराद हैं जिनके रखे रह जाने से ख़राब होने का अन्देशा हो जैसे शोरबा, सब्ज़ी बाज़े फल वग़ैरह।

माँगने वाले को ज़रूर देना चाहिए

हदीसः (11) हज़रत उम्मे बुजैद रज़ियल्लाहु अन्हा का बयान है कि मैंने रसूले खुदा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से अर्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे दरवाज़े पर मिस्कीन आ खड़ा होता है (उसे कुछ दिये बग़ैर वापस करने में शर्म आती है) और देने के लिये (कोई ख़ास क़ाबिले ज़िक्र) चीज़ घर में होती नहीं (तो उस सूरत में क्या करूँ)। फ़रमाया (जो कुछ हो सके) उसके हाथ पर रख दो अगरचे (बकरी वग़ैरह का) जला हुआ खुर ही हो।

(मिश्कात शरीफ़, तिर्मिज़ी के हवाले से)

तशरीहः जैसे हदिया लेने-देने में नफ़्सानी तौर पर यह ख़्याल होता है कि ज़रा-सी चीज़ है किसी को क्या दें? और थोड़ी चीज़ हदिया देने को शर्म और ऐब समझा जाता है। इसी तरह सदक़ा ख़ैरात करने में भी बहुत-से लोगों पर नफ़्सानियत सवार हो जाती है। ज़्यादा देने को होता नहीं, या ज़्यादा देने को दिल नहीं चाहता और थोड़ा देना शान के ख़िलाफ़ समझते हैं इसलिए सदक़ा करने से महरूम रहते हैं। हज़रत उम्मे बुजैद रज़ियल्लाहु अन्हा ने यही सवाल किया कि कोई क़ाबिले ज़िक्र चीज़ घर में देने को नहीं होती और साईल आ खड़ा होता है, उसको ख़ाली हाथ वापस करना ना-मुनासिब मालूम होता है, लिहाज़ा ऐसी सूरत में क्या किया जाए? नबी पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो कुछ हो उसको दे दो, थोड़े-बहुत का ख़्याल न करो, अगर कुछ भी न हो तो बकरी का जला हुआ खुर ही दे दो।

यह बतौर मिसाल के फ़रमाया क्योंकि बकरी के पावों का आख़िरी हिस्सा जो ज़मीन पर लगता है उसमें न गोश्त होता है न कुछ और चीज़ खाने के मतलब की निकलती है, फिर जबकि वह जला हुआ हो तो बिलकुल ही किसी काम का नहीं। मतलब यह है कि ग़रीब की गुरबत का ख़्याल करो, उसे कुछ न कुछ ज़रूर दो, मामूली चीज़ हो तो वही दे दो, अपनी शान घटने और नाक कटने का ख़्याल करते हुए थोड़ी चीज़ को न रोको, बूँद-बूँद दरिया हो जाता है। रोज़ाना ज़रा-ज़रा-सा सदक़ा करो तो आख़िरत में बहुत कुछ मिलेगा और यहाँ मिस्कीन की हाजत किसी दर्जे में पूरी हो जाएगी। बुज़ुर्गों ने बताया है कि जिस्मानी इबादतें जन्नत में दाख़िले का ज़रिया हैं और माली सदक़ा व ख़ैरात दोज़ख़ से बचाने के लिए अक्सीर है। जो कुछ हो ख़र्च कर देना चाहिए। एक हदीस में इरशाद है कि "दोज़ख़ से बचो अगरचे आधी खजूर ही के ज़रिये हो"। (मिश्कात शरीफ़)

फ़ायदाः पेशेवर साईल (भिखारी और माँगने वाले) जो माँगते फिरते हैं वे उमूमन मालदार होते हैं, उनके बजाय उन ज़रूरतमन्दों को दो जो वाक़ई ग़रीब हों। असली मिस्कीनों और ग़रीबों की तलाश रखो और उनकी माली ख़िदमत करो।

सदक़े से आने वाली मुसीबत रुक जाती है

आने वाली मुसीबत भी सदक़े की वजह से रुक जाती है। रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया हैः

"मुसीबत आने से पहले सदक़ा दे दो क्योंकि (सदक़ा दीवार की तरह आड़े आ जाता है और मुसीबत उसको फाँदकर नहीं आ सकती।" (मिश्कात शरीफ़)

रुपया-पैसा जो कुछ सदक़ा करें मुसीबत दूर करने के लिए बहुत

ही फ़ायदे की चीज़ है।

जारी रहने वाले सदके का सवाब

हदीसः (12) हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि जब इनसान मर जाता है तो उसके सब आमाल ख़त्म हो जाते हैं लेकिन तीन चीज़ों का नफ़ा पहुँचता रहता है-

(1) जारी रहने वाला सदक़ा।

(2) ऐसा इल्म जिससे लोग नफ़ा हासिल करते हैं।

(3) नेक औलाद जो उसके लिए दुआ़ करती है।

(मिश्कात, मुस्लिम)

तशरीहः जब तक आदमी ज़िन्दा रहता है ख़ुद नेकियाँ कमाता है और अपने लिए आख़िरत में ज़ख़ीरा जमा करता रहता है, लेकिन जब मौत आ जाती है तो आमाल ख़त्म हो जाते हैं और सवाब जारी रहने का सिलसिला भी ख़त्म हो जाता है, अलबत्ता तीन चीज़ें ऐसी हैं जो उसके अ़मल का नतीजा हैं और उनका सवाब मौत के बाद भी जारी रहता है।

(1) **जारी रहने वाला सदक़ा** उसको कहते हैं जिसका नफ़ा वक़्ती तौर पर ख़त्म न हो जाए बल्कि उससे लोग फ़ायदा उठाते रहें और सदक़ा करने वाले को सवाब मिलता रहे। जैसे कोई मस्जिद बनवा दी, दीनी मदरसे की तामीर में हिस्सा लिया, किसी दारुल उलूम में तफ़सीर व हदीस और फ़िक़्ह व फ़तावा की किताबें वक़्फ़ कर दीं, कहीं कुआँ खुदवा दिया, मुसाफ़िर ख़ाना बनवा दिया, या कोई ऐसा काम कर दिया जिससे अ़वाम व ख़्वास को नफ़ा होता है। एक आदमी इस तरह के किसी काम पर पैसा ख़र्च करके जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ क़ब्र में चला

गया, लोग उसके सदक़ा व ख़ैरात से फ़ायदा उठा रहे हैं और उसके आमालनामे में बराबर सवाब लिखा जा रहा है और दर्जे बुलन्द हो रहे हैं। जहाँ तक हो सके ज़िन्दगी में ऐसा काम ज़रूर कर देना चाहिए।

(2) वह इल्म जिससे नफ़ा उठाया जाता हो। यह भी वह चीज़ है जिसका सवाब मौत के बाद जारी रहता है। किसी को कुरआन मजीद हिफ़्ज़ या नाज़रा पढ़ा दिया, किसी को नमाज़ सिखा दी, किसी को मौलवी बना दिया या कोई दीनी किताब लिख दी, या अपने पैसे से किसी दीनी किताब को शाया (प्रकाशित) कर दी, यह इल्मी 'सदक़ा जारिया' (यानी जारी रहने वाला सदक़ा) है। कुरआन पढ़ने वाला जब तक कुरआन मजीद पढ़ेगा या पढ़ाएगा फिर उसके शागिर्द और शागिर्दों के शागिर्द पढ़ाएँगे, मौलवी साहिब तफ़सीर व हदीस पढ़ाएँगे, मसला बताएँगे, लोग उनसे फ़ायदा उठायेंगे और आगे उनके शागिर्द और शागिर्दों के शागिर्द इल्म फैलाएँगे, जिसको नमाज़ सिखा दी वह नमाज़ पढ़ता रहेगा और दूसरों को सिखाएगा, तो उसका सवाब सदियों तक उस शख़्स को मिलता रहेगा जिसने दीनी इल्म को आगे बढ़ाया या आगे बढ़ाने का ज़रिया बन गया। और जितने लोग उसका ज़रिया और वास्ता बनते जाएँगे उन सब का सवाब मिलता रहेगा और किसी के सवाब में कमी न होगी।

(3) नेक औलाद जो दुआ करती हो उसकी दुआ का फ़ायदा भी माँ-बाप को पहुँचता रहता है। दुआ में तो कुछ जान-माल ख़र्च नहीं होता, वक़्त-वक़्त पर अगर माँ-बाप के लिए मग़फ़िरत और दरजों की बुलन्दी की दुआ कर दी जाए तो माँ-बाप को बहुत बड़ा नफ़ा पहुँचता रहेगा और औलाद का कुछ भी ख़र्च न होगा। औलाद की पैदाइश का ज़रिया बनना और उसको पालना-पोसना चूँकि माँ-बाप का अमल है और माँ-बाप की परवरिश के बाद औलाद दुआ के क़ाबिल हुई है

इसलिए औलाद की दुआ़ को माँ-बाप का अ़मल शुमार कर लिया गया, बल्कि अगर औलाद को दीन का इल्म सिखाया और दीनी आमाल पर डाला, उसकी ज़िन्दगी इस्लामी ज़िन्दगी बनाई तो वह जो नेक अ़मल करेगा माँ-बाप को भी उसका सवाब मिलेगा, क्योंकि वे उसकी नेकियों का ज़रिया बने। फिर औलाद अपनी औलाद को नेक बनाएगी तो उसमें भी दादा-दादी और नाना-नानी की शिरकत (हिस्सेदारी) होगी।

पड़ोसियों को लेने-देने की फ़ज़ीलत

हदीसः (13) हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु का बयान है कि सरवरे आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुसलमान औरतों से ख़िताब करके फ़रमाया कि कोई पड़ोसन अपनी पड़ोसन के लिए किसी भी चीज़ (के लेने-देने) को हक़ीर न जाने अगरचे बकरी का खुर ही हो। (मिश्कात शरीफ़, बुख़ारी व मुस्लिम के हवाले से)

तशरीहः इस्लाम में पड़ोसी के बड़े हुकूक़ हैं जिनकी सुरक्षा बहुत ज़रूरी है। हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि पड़ोसी के साथ अच्छी तरह मिलजुल कर रहने और उसके हुकूक़ की रियायत के बारे में मुझे जिब्राईल (अ़लैहिस्साम) ने इस क़द्र बार-बार तवज्जोह दिलाई जिससे मुझे यह गुमान हो गया कि (शायद) पड़ोसी को (दूसरे पड़ोसी के माल से) मीरास दिलाकर छोड़ेंगे।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

एक हदीस में इरशाद हैः

एक साथ रहने-सहने वालों में सबसे बेहतर वह है जो अपने साथियों के लिए बेहतर हो, और पड़ोसियों में सबसे बेहतर वह है जो अपने पड़ोसियों के लिए सबसे बेहतर हो। (तिर्मिज़ी शरीफ़)

मालूम हुआ कि इनसान के अच्छा-बुरा होने का मदार साथियों

और पड़ोसियों के साथ अच्छा सुलूक करने न करने पर है, इनसान का अच्छे अख़्लाक़ वाला होना उसी वक़्त क़ाबिले तारीफ़ है जबकि हर वक़्त के साथ रहने वालों से अच्छी तरह पेश आता रहे, क्योंकि कभी-कभार जिससे मुलाक़ात हुई हो उससे मीठे-मुँह बात कर लेना और ज़बानी अलक़ाब व आदाब से पेश आ जाना कोई बड़ी बात नहीं है। जिनसे अक्सर वास्ता पड़ता हो, बल्कि थोड़ी-बहुत तकलीफ़ भी पहुँच जाती हो उनके साथ अच्छा बर्ताव करना कठिन काम है और इसी वजह से इसका दर्जा भी बहुत बड़ा है।

आजकल तो रिश्तेदारों और बहन-भाइयों में अच्छे तरीक़े के साथ रहने और बेहतर ताल्लुक़ात रखने का रिवाज नहीं रहा, कहाँ यह कि पड़ोसी से अच्छी तरह पेश आएँ। यह ईमानी ज़िन्दगी के अन्दर बहुत बड़ा 'ख़ला' (ख़ाली जगह) है। मोमिन बन्दे तो दुश्मन को भी ख़ुश करने की कोशिश करते हैं। शैख़ सअ़दी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं:

شنیدم کہ مردانِ راہِ خدا　　دلِ دشمناں ہم نہ کردند تنگ

ترا کے میسر شود ایں مقام　　کہ بادوستانت خلاف ست و جنگ

तर्जुमाः मैंने सुना है कि नेक लोग दुश्मनों का दिल भी नहीं दुखाते। तुझे यह बात कहाँ हासिल हो सकती है इसलिए कि तू तो अपने दोस्तों से ही लड़ता-भिड़ता रहता है।

मर्दों से ज़्यादा औ़रतों में अख़्लाक़ की कमज़ोरी होती है और वे पास-पड़ोस की दूसरी औ़रतों के साथ निबाह करके रह सकती ही नहीं। पड़ोसनों में वह कीड़े डाले जाते हैं और ऐसी-ऐसी बुराइयाँ निकाले जाती हैं कि जिनकी क़ल्मी तसवीर खींचने से भी उंगिलयाँ इनकार करती हैं। एक औ़रत का क़द छोटा है तो उसी पर ताना दिया

जा रहा है। दूसरी का रंग काला है तो उसका नाम धरा जाता है। तीसरी ज़रा लंगाड़ा कर चलती है तो उसी की ग़ीबत की जा रही है। हालाँकि ये चीज़ें इनसान के अपने इख़्तियार से बाहर हैं जो पैदाइशी हैं, उनपर एतिराज़ करना ख़ुदा तआला पर एतिराज़ करना है। ख़ुलासा यह कि औरतों को ताल्लुक़ात अच्छे और मधुर रखने से ज़्यादा बिगाड़ने के ढंग आते हैं, उनके इस मिज़ाज को सामने रखते हुए हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने आपस में हदिये का लेन-देन रखने की तरग़ीब दी। हदिया लेना-देना बड़ी अच्छी आदत है। एक हदीस में इरशाद है: 'आपस में हदिया लिया दिया करो, क्योंकि वह कीनों को दूर करता है। (मिश्कात शरीफ़)

किसी का हदिया हक़ीर न जानो

इस बेहतरीन आदत को इख़्तियार करने में भी शैतान बहुत-सी बाधाएँ खड़ी कर देता है और ऐसी नफ़्सानियत की बातें समझाता है जो हदिया देने से रोक देती हैं। चुनाँचे बहुत-सी औरतों पर यह नफ़्सानियत सवार हो जाती है और कहती हैं कि ज़रा-सी चीज़ का क्या देना? किसी को कुछ दे तो ठिकाने की चीज़ तो दे, दो जलेबी क्या भेजें, कोई क्या कहेगा? इससे तो न भेजना ही बेहतर है।

इसी तरह हदिया क़बूल करने में भी शैतान छोटाई-बड़ाई का सवाल सुझा देता है। अगर किसी पड़ोसन ने मामूली चीज़ हदिये में भेज दी तो कहती हैं कि निगोड़ी ने क्या भेजा है, न अपनी हैसियत का ख़्याल किया न हमारी इज़्ज़त का, भेजने में शर्म भी न आई। गोया भेजने का शुक्रिया तो दरकिनार तानों की बौछार शुरू हो जाती है और कई-कई दिन ग़ीबतें होती रहती हैं। अगर कई साल के बाद किसी बात पर अनबन हो गई तो यह बात भी दोहरा दी कि तूने क्या भेजा

था, ज़रा-सी कढ़ी में एक फुल्की डाल कर।

कुरबान जाइये उस हकीम व मुआ़लिज (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के जिसको इस कायनात के पैदा करने वाले ने दिलों की बीमारियों से आगाह फ़रमाया और साथ ही उनके इलाज भी बताए। मुआ़लिज (इलाज करने वाले) ने दुखती रग पर हाथ रखा और अन्दर का चोर पकड़ा और फ़रमायाः "कोई पड़ोसन किसी पड़ोसन के लिए किसी चीज़ के ह़दिये को हक़ीर (मामूली और बेक़द्र) न जाने।"

अल्लाह-अल्लाह कैसा जामे जुमला (वाक्या) है। हदीस की शरह लिखने वाले आ़लिमों ने बताया है कि इस हदीस के अल्फ़ाज़ से दोनों तरह का मतलब निकल सकता है, देने वाली देते वक़्त कम न समझे, जो मयस्सर हो दे दे। और जिसके पास पहुँचे वह भी हक़ीर और कम न जाने चाहे कैसा ही कम और मामूली हदिया हो। मिसाल के तौर पर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अगर बकरी का खुर ही एक औ़रत दूसरी औ़रत के पास भेज सकती हो तो भेजने वाली कम समझकर रुक न जाए और दूसरी औ़रत उसके क़बूल करने को अपनी शान के ख़िलाफ़ न समझे। हर छोटा-बड़ा हदिया ख़ुशी से क़बूल करो और दिल व ज़बान से शुक्र अदा करो। भेजने वाली को दुआ़ दो, अल्लाह से उसके लिए बरकत की दुआ़ माँगो, और यह भी ख़्याल रखो कि हमको भी भेजना चाहिए। मौक़ा लगे तो ज़रूर भेजो और बहनों में बैठकर तज़किरा करो कि फ़लानी ने मुझे यह हदिया भेजा है ताकि उसका दिल ख़ुश हो। और इस हदीस का मतलब यह न समझना कि हदिया कम ही भेजा करें बल्कि ज़्यादा मयस्सर हो तो ज़्यादा भेजो और कम की वजह से यह न हो कि भेजो ही नहीं।

हदिया देने में कौनसे पड़ोसी को ज़्यादा तरजीह है

हदीसः (14) हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि मैंने अ़र्ज़ किया ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे दो पड़ोसी हैं उनमें से किसको हदिया दूँ? आपने इरशाद फ़रमाया दोनों में से जिसका दरवाज़ा तुम से ज़्यादा क़रीब हो। (मिश्कात शरीफ़, बुख़ारी के हवाले से)

तशरीहः हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जब हदिया लेने-देने की तरग़ीब दी और इसको उलफ़त व मुहब्बत और आख़िरत में सवाब मिलने का ज़रिया बताया तो इस सिलसिले में बाज़ बातें दरियाफ़्त करने के क़ाबिल सामने आ गईं, जिनमें से एक यह सवाल भी है जो ऊपर वाली हदीस में ज़िक्र हुआ है। हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने आँ-हज़रत सरवरे आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दरियाफ़्त किया कि अगर मेरे दो पड़ोसी हों (यह मिसाल के तौर पर है) और मुझे कुछ हदिया देना हो, और दोनों को देने के लिए न हों तो किसको दूँ? मतलब यह है कि दोनों में कौन पहले है? और पहले किसका ख़्याल करूँ। आपने फ़रमाया जिसका दरवाज़ा सबके दरवाज़ों से ज़्यादा क़रीब हो उसको दो। इस हदीस से पड़ोसियों को हदिया देने का एक तरीक़ा भी मालूम हुआ और यह भी पता चला कि नेकी करने के लिए समझ चाहिए और उसके लिएं इल्म की भी ज़रूरत है और होश की भी।

सदक़ा-ए-फ़ित्र के अहकाम

हदीसः (15) हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सदक़ा-ए-फ़ित्र को ज़रूरी क़रार दिया। (प्रति आदमी) एक **'साअ़'** (एक साअ़ कुछ ऊपर साढ़े तीन सेर का होता था) खजूरें या उतनी ही मात्रा में **'जौ'** दिए

जाएँ। गुलाम और आज़ाद, 'मुज़क्कर और मुअन्नस' (यानी मर्द और औरत) और हर छोटे-बड़े मुसलमान की तरफ़ से, और ईद की नमाज़ के लिए लोगों के जाने से पहले अदा करने का हुक्म फ़रमाया।

(मिश्कात, बुख़ारी व मुस्लिम के हवाले से)

सदक़ा-ए-फ़ित्र किस पर वाजिब है

सदक़ा-ए-फ़ित्र उस शख़्स पर वाजिब है जिस पर ज़कात फ़र्ज़ है या साढ़े बावन तौला चाँदी या उसकी क़ीमत उसकी मिल्कियत में हो। या अगर सोना-चाँदी और नक़द रक़म न हो और ज़रूरत से फ़ालतू सामान मौजूद हो जिसकी क़ीमत साढ़े बावन तौला चाँदी की बन सकती हो तो उसपर भी सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब है। ज़कात फ़र्ज़ होने के लिए यह ज़रूरी है कि **निसाब** के माल पर चाँद के हिसाब से एक साल गुज़र जाए, लेकिन सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब होने के लिए यह शर्त नहीं है। अगर रमज़ान की तीस तारीख़ को किसी के पास माल आ गया जिस पर सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब हो जाता है तो ईदुल-फ़ित्र की सुबह सादिक़ होते ही उसपर सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब हो जाएगा।

सदक़ा-ए-फ़ित्र के फ़ायदे

सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा करने से एक शरई हुक्म के अन्जाम देने का सवाब तो मिलता ही है उसके साथ दो और भी फ़ायदे हैं- **अव्वल** यह कि सदक़ा-ए-फ़ित्र रोज़ों का पाक साफ़ करने का ज़रिया है, रोज़े की हालत में जो फ़ुज़ूल बातें कीं और जो ख़राब और गन्दी बातें ज़बान से निकलीं सदक़ा-ए-फ़ित्र के ज़रिये रोज़े उन चीज़ों से पाक हो जाते हैं। **दूसरा** फ़ायदा यह है कि ईद के दिन ग़रीबों और मिस्कीनों की ख़ुराक का इन्तिज़ाम हो जाता है, और इसी लिए ईद की नमाज़ को जाने से पहले सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा करने का हुक्म दिया गया है। देखो कितना

सस्ता सौदा है कि सिर्फ़ दो सेर गेहूँ देने से तीस रोज़े पाक हो जाते हैं, यानी बेकार की और गन्दी बातों की रोज़े में जो मिलावट हो गई उसके असरात से रोज़े पाक हो जाते हैं।

गोया सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा कर देने से रोज़ों की क़बूलियत की राह में कोई अटकाने वाली चीज़ बाक़ी नहीं रह जाती है। इसी लिए बाज़ बुज़ुर्गों ने फ़रमाया है कि अगर मसले की रू-से किसी पर सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब न हो तब भी दे देना चाहिए। ख़र्च बहुत मामूली है और नफ़ा बहुत बड़ा है।

किसकी तरफ़ से सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा किया जाए

सदक़ा-ए-फ़ित्र बालिग़ औरत पर अपनी तरफ़ से देना वाजिब है। शौहर के ज़िम्मे उसका सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा करना ज़रूरी नहीं। और जो नाबालिग़ औलाद है उसकी तरफ़ से वालिद (बाप) पर सदक़ा-ए-फ़ित्र देना वाजिब है। बच्चों की माँ के ज़िम्मे बच्चों का सदक़ा-ए-फ़ित्र देना लाज़िम नहीं है। अगर बीवी कहे कि मेरी तरफ़ से अदा कर दो और शौहर बीवी की तरफ़ से अदा कर दे तो अदा हो जाएगा अगरचे उसके ज़िम्मे बीवी की तरफ़ से अदा करना लाज़िम नहीं है।

जब मुसलमान जिहाद किया करते थे तो उनके पास जो काफ़िर क़ैदी होकर आते थे उनको गुलाम और बाँदी बना लिया जाता था, जिसकी मिल्कियत में गुलाम या बाँदी होता उसके ऊपर गुलाम या बाँदी की तरफ़ से भी सदक़ा-ए-फ़ित्र देना वाजिब होता था, आजकल कहीं अगर जंग होती है तो देश और मुल्क की लड़ाई होती है शरई जिहाद होता नहीं लिहाज़ा मुसलमान गुलाम और बाँदी से महरूम हैं।

सदक़ा-ए-फ़ित्र में क्या दिया जाए

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सदक़ा-ए-फ़ित्र देने के सिलसिले में दीनार व दिर्हम यानी सोने-चाँदी का सिक्का ज़िक्र नहीं फ़रमाया बल्कि जो चीज़ें घरों में आ़म तौर से खाई जाती हैं उन्हीं के ज़रिये सदक़ा-ए-फ़ित्र की अदायगी बताई। ऊपर वाली हदीस में जिसका तर्जुमा अभी हुआ एक **'साअ़ खजूर'** या एक **'साअ़ जौ'** प्रति आदमी सदक़ा-ए-फ़ित्र की अदायगी के लिए देने का ज़िक्र है। दूसरी हदीसों में एक **'साअ़ पनीर'** या एक **'साअ़ ज़बीब'** यानी किशमिश देने का भी ज़िक्र आया है। और बाज़ रिवायतों में एक साअ़ गेहूँ दो आदमियों की तरफ़ से बतौर सदक़ा-ए-फ़ित्र देना भी आया है। हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि का यही मज़हब है। लिहाज़ा अगर सदक़ा-ए-फ़ित्र में **जौ** दे तो कए साअ़ दे और गेहूँ दे तो आधा साअ़ दे।

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में **जौ** और **गेहूँ** वग़ैरह नाप कर फ़रोख़्त किया करते थे और इन चीज़ों को तौलने के बजाय नापने का रिवाज था। उस ज़माने में नापने का जो एक पैमाना था उसी हिसाब से हदीस शरीफ़ में सदक़ा-ए-फ़ित्र की मिक़्दार (मात्रा) बताई है। एक साअ़ कुछ ऊपर साढ़े तीन सेर का होता था। हिन्दुस्तान के बुज़ुर्गों ने जब उसका हिसाब लगाया तो एक शख़्स का सदक़ा-ए-फ़ित्र गेहूं के एतिबार से अस्सी के सेर से एक सेर साढ़े बारह छटाँक हुआ। आ़म तौर से किताबों में अ़वाम की रियायत से यही तौल वाली बात लिखी जाती है। अगर एक घर में मियाँ-बीवी और चन्द नाबालिग़ बच्चे हों मो मर्द पर अपनी तरफ़ से और हर नाबालिग़ औलाद की तरफ़ से सदक़ा-ए-फ़ित्र में प्रति आदमी एक सेर

साढ़े बारह छटाँक गेहूँ या उसका दुगना जौ या छुहारे या किशमिश या पनीर देना वाजिब है। बीवी की तरफ़ से सदक़ा-ए-फ़ित्र देना वाजिब नहीं है और माँ जितनी भी मालदार है नाबालिग़ औलाद का सदक़ा-ए-फ़ित्र उसको अदा करना वाजिब नहीं, यह सदक़ा बाप पर वाजिब होता है।

सदक़ा-ए-फ़ित्र की अदायगी का वक़्त

सदक़ा-ए-फ़ित्र ईद के दिन की सुबह के निकलने पर वाजिब होता है। अगर कोई शख़्स उससे पहले मर जाए तो उसकी तरफ़ से सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब नहीं।

मसलाः सदक़ा-ए-फ़ित्र ईद से पहले अदा किया जा सकता है। अगर पहले अदा न किया तो ईद की नमाज़ के लिए जाने से पहले अदा कर दिया जाए। अगर किसी ने ईद की नमाज़ से पहले या बाद में न दिया तो उसके ज़िम्मे से ख़त्म न होगा, उसकी अदायगी बराबर ज़िम्मे रहेगी।

मसलाः जो बच्चा ईदुल-फ़ित्र की सुबह सादिक़ हो जाने के बाद पैदा हुआ हो उसकी तरफ़ से सदक़ा-ए-फ़ित्र देना वाजिब नहीं।

नाबालिग़ के माल से सदक़ा-ए-फ़ित्र

अगर किसी नाबालिग़ की मिल्कियत में ख़ुद अपना माल हो जिस पर सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब होता है तो उसका वारिस उसी के माल से उसका सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा करे। इस सूरत में अपने माल से देना वाजिब नहीं।

सवालः बच्चे की मिल्कियत में माल कहाँ से आएगा?

जवाबः इस तरह से आ सकता है कि किसी की मीरास से उसको माल पहुँच जाए या कोई शख़्स उसको कुछ माल दे दे।

जिसने रोज़े न रखे हों उसपर भी सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब है

अगर किसी बालिग़ मर्द व औ़रत ने किसी वजह से रोज़े न रखे हों तब भी सदक़ा-ए-फ़ित्र का निसाब होने पर सदक़े की अदायगी वाजिब है।

सदक़ा-ए-फ़ित्र में नक़द क़ीमत या आटा वग़ैरह

सदक़ा-ए-फ़ित्र में गेहूँ का आटा भी दिया जा सकता है, वज़न वही है जो ऊपर गुज़रा। और जौ का आटा भी दे सकते हैं, उसका वज़न भी वही है जो जौ का वज़न है।

मसलाः सदक़ा-ए-फ़ित्र में जौ या गेहूँ की नक़द क़ीमत भी दी जा सकती है, बल्कि उसका देना अफ़ज़ल है। अगर गेहूँ और जौ के अ़लावा किसी दूसरे अनाज से सदक़ा-ए-फ़ित्र अदा करे जैसे चना, चावल, उडद, जवार और मकई वग़ैरह देना। चाहे तो इतनी मात्रा में दे कि उसकी क़ीमत एक सेर साढ़े बारह छटाँक गेहूँ या उससे दुगने जौ की क़ीमत के बराबर हो जाए।

सदक़ा-ए-फ़ित्र की अदायगी में कुछ तफ़सील

मसलाः एक शख़्स का सदक़ा-ए-फ़ित्र एक मोहताज को दे देना या थोड़ा-थोड़ा करके कई मोहताजों को देना दोनों सूरतें जायज़ हैं। और यह भी जायज़ है कि चन्द आदमियों का सदक़ा-ए-फ़ित्र एक ही मोहताज को दे दिया जाए।

निसाब के मालिक को सदक़ा-ए-फ़ित्र देना जायज़ नहीं

जिस पर ज़कात खुद वाजिब हो या ज़कात वाजिब होने की मात्रा में उसके पास माल हो या ज़रूरत से फ़ालतू सामान हो जिसकी वजह से सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब हो जाता है तो ऐसे शख़्स को सदक़ा-ए-फ़ित्र

देना जायज़ नहीं। जिसकी हैसियत इससे कम हो शरीअ़त के नज़दीक उसे फ़क़ीर कहा जाता है, उसे ज़कात और फ़ित्रा दे सकते हैं।

रिश्तेदारों को सदक़ा-ए-फ़ित्र देने में तफ़सील

अपनी औलाद को या माँ-बाप और नाना-नानी दादा-दादी को ज़कात और सदक़ा-ए-फ़ित्र नहीं दे सकते, अलबत्ता दूसरे रिश्तेदारों को जैसे भाई-बहन चचा मामूँ ख़ाला वग़ैरह को दे सकते हैं। शौहर बीवी को या बीवी शौहर को सदक़ा-ए-फ़ित्र दे तो अदायगी न होगी। और सय्यिदों को भी सदक़ा-ए-फ़ित्र देना जायज़ नहीं।

फ़ायदाः बहुत-से लोग पेशेवर माँगने वालों के ज़ाहिरी फटे-पुराने कपड़े देखकर या किसी औ़रत को बेवा (विधवा) पाकर ज़कात और सदक़ा-ए-फ़ित्र दे देते हैं, हालाँकि कई बार बेवा औ़रत के पास शरई निसाब के बराबर ज़ेवर होता है। इसी तरह रोज़ाना के माँगने वालों के पास अच्छी-ख़ासी मालियत होती है, हालाँकि जिसके पास निसाब के बराबर माल हो उसको देने से अदायगी नहीं होती। ज़कात और सदक़ा-ए-फ़ित्र की रक़म ख़ूब सोच-समझकर देना लाज़िम है।

रिश्तेदारों को देने से दोहरा सवाब होता हैः जिन रिश्तेदारों को ज़कात और सदक़ा-ए-फ़ित्र देना जायज़ है उनको देने से दोहरा सवाब होता है क्योंकि उसमें **'सिला रहमी'** (रिश्तेदारी की वजह से अच्छा बर्ताव) भी हो जाती है।

नौकरों को सदक़ा-ए-फ़ित्र देनाः अपने ग़रीब नौकरों को भी ज़कात और सदक़ा-ए-फ़ित्र दे सकते हैं मगर उनकी तन्ख़्वाह में लगाना दुरुस्त नहीं।

बालिग़ औ़रत अगर निसाब की मालिक होः अगर बालिग़ औ़रत इस क़ाबिल है कि उसको सदक़ा-ए-फ़ित्र दिया जा सके तो उसे दे सकते हैं अगरचे उसके मायके वाले मालदार हों।